वैदकी अग्निहोत्र क्रिया १२ः:जलसिञ्चनम्=यज्ञ कुण्ड के चारों दिशाओं में जल सिंञ्चन

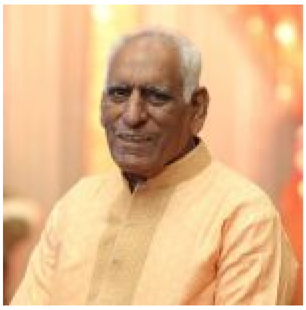

विगत एकादश क्रिया में हमने अग्नि को तीव्र करने के लिए घृत कि पांच आहुतियाँ एक ही मन्त्र का पांच बार उच्चारण करते हुए दीं थीं। यह इसलिए किया गया ताकि यज्ञ की अग्नि तीव्र हो जावे और इस में डाली जाने वाली आहुति यज्ञकुण्ड में नीचे तक न जा कर ऊपर ही ज्वलनशील होकर हल्की हो जावे और वायु मंडल में सब और फ़ैल जावे। अब हमारे इस यज्ञ की अग्नि ने तीव्रता पकड़ ली है। पास बैठे यज्ञमान समूह को भी अग्नि का सेंक पहुंचने लगा है। अब हम जल से कुछ इस प्रकार की क्रियाएँ करते हैं, जिससे अग्नि तो तीव्र ही रहे किन्तु इस का प्रकोप पास में ही बैठे यज्ञकर्ता को कम हो जावे और जल की शीतलता से इस अग्नि का तेज भी जल की शीतलता को ग्रहण करते हुए कुछ रासायनिक क्रिया करते हुए सब के लिए लाभदायक हो सके। इस क्रिया का नाम है "जलसिञ्चनम्।" इस विधि को संपन्न करने के लिए चार मन्त्रों के साथ यज्ञवेदी के चारों दिशाओं में जल के छींटे दिए जाते हैं। मन्त्र इस प्रकार हैं:-

ओम अदितेऽनुमन्यस्व ॥१॥

ये भी पढ़िये : वैदिक अग्निहोत्र क्रिया ११ : पञ्चाहुत्या=शुद्ध घृत की पांच आहुतियाँ

यह जल प्रसेचन का प्रथम मन्त्र है। इस मन्त्र को बोलकर यज्ञकुंड की पूर्व दिशा में जल के छींटे देते हैं। इस का भाव यह है कि अदिते हे अखंड व्रतों के स्वामी आदिते देव ! अनु-मन्यस्व आप हमें अनुमति दें ।

इस मन्त्र के माध्यम से परमपिता परमात्मा, जिसे हम यहाँ अदिती के नाम से सम्बोधन कर रहे हैं, इस यज्ञ के सम्बन्ध में कुछ अनुमति मांग रहे हैं। क्या अनुमति मांग रहे हैं, इस सम्बन्ध में आगे कहा गया है- ओम अनुमतेऽनुमन्यस्व॥२॥
इस मन्त्र का उच्चारण कर हम यज्ञकुण्ड की पश्चिम दिशा में जल छोड़ते हैं। इस का भाव यह होता है कि :-

अनुमते सब को अपनी आज्ञा में चलाने वाले हे परमेश्वर ! अनु-मन्यस्व आप हमें आज्ञा दें। हम आपके आदेश के अनुसार इस कर्म में प्रवृत हों।

ओम सरस्वत्यनुमन्यस्व॥३॥
इस मन्त्र के उच्चारण के साथ हम यज्ञकुण्ड की उत्तर दिशा में जल प्रसेचन का कार्य करते हैं। इसका भाव यह है कि :-सरस्वती हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! अनु-मन्यस्व आप हमें हमारे अनुकूल मति (बुद्धि) प्रदान करें।

इन तीन मन्त्रों का भाव यह है कि किसी भी कर्म की सफलता के लिए तीन स्तर होते हैं। इन तीन मन्त्रों के माध्यम से हम उन तीनों स्तरों का ही संकेत समझाने का प्रयास कर रहे हैं।

हमारा यह व्रत अखंड हो, हम इस व्रत में कभी बाधा न आने दें। हम नियमित रूप से प्रतिदिन यह यज्ञ का कर्म करते रहें। हम प्रतिदिन यज्ञ करते हुए हे प्रभु। आपकी आज्ञा का पालन करते रहें।
हम ज्ञान के द्वारा परमपिता परमात्मा के उस आदेश और उस व्रत को समझ लें। त्याग धर्म के लिए प्रेरणा केवल परमात्मा ही दे सकता है, अन्य कोई नहीं। जब हमारे पास परम्पिता का सहारा होता है तो हम स्वयमेव ही अत्यंत ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं और फिर इस प्राप्त किये गए ऐश्वर्य को हम त्यागने के लिए भी प्रभु प्रेरणा से ही बाधित भी हो जाते हैं। हम यह जो अग्निहोत्र करते हैं इस हवन का अर्थ ही त्याग होता है। जब हम इन तीन मन्त्रों से जल प्रसेचन की क्रियाएं करते हैं तो यह इसलिए करते हैं कि यह सब बातें इन मन्त्रों के माध्यम से हमारे हृदय पटल पर अंकित हो जावे।

अब तक हमने तीन मन्त्रों के उच्चारण के साथ यज्ञकुण्ड की एक एक दिशा में जल प्रसेचन का कार्य किया था। अब अगले मन्त्र से हम यज्ञ कुण्ड की चारों दिशाओं में जल प्रसेचन का कार्य करेंगे। पूर्व मन्त्रों से एक एक दिशा में किया था और अब इस मन्त्र के साथ हम पहले वाली दिशाओं सहित जल प्रसेचन का कार्य करेंगे। इस का आरम्भ पश्चिम उत्तर दिशा के उस कोने से करेंगे, जहां हमने अग्नि प्रज्वलित करने के पश्चात् दीपक रखा था। जल प्रसेचन दीपक से आरम्भ कर पूर्व को चलेंगे और घुमाते हुए दीपक के पास आकर ही हम इसे समाप्त करेंगे।

ओम देव सवितु : प्रसव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भागे। दिव्यों गन्धर्व:
केतपू : केतव : पुनातु वाचस्पतिर्वाचं न : स्वदतु॥४॥ यजुर्वेद ३०.१

सवित : हे सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक सविता देव ! देव प्रकाश रूप प्रभु ! यज्ञं इस यज्ञ को प्र-सुव हमारे इस यज्ञ की सब क्रियाओं को अच्छे प्रकार से सम्पादन कराइए। यज्ञ-पतिं हमारे इस यज्ञ को करने वाले यज्ञमान को भगाय अपार ऐश्वर्य के लिए प्र-सुव प्रेरित कीजिये दिव्य : गन्धर्व: तेजस्वी वाणी को धारण करने वाले केत-पू :ज्ञान को पवित्र करने वाले स्वामिन् न : हम सबकी केतं बुद्धि को पुनातु पवित्र करो। वाचस्पति : आप ही विद्या के रक्षक हो न : वाचं हमारी वाणी को स्वदतु ऐसा मीठा बनाओ कि लोग इसे पसंद करें।

यजुर्वेद से लिए गए इस मन्त्र का भाव यह है कि हम प्रभु प्रेरणा से पवित्र तथा बलवती बुद्धि वाले होकर, परमपिता परमात्मा ने जो विश्व व्यापी यज्ञ आरम्भ कर रखा है, उसका ध्यान करते हुए, अत्यंत

श्रद्धा से यथाशक्ति अथवा अपने सामर्थ्य के अनुसार हम नित्यप्रति अग्निहोत्र के कर्म में लगे रहें। जब भी कभी हम धर्म का कार्य करें तो इस प्रकार न करें कि एसा लगे जैसे पत्थर फैंका गया हो अपितु हम इतनी मिठास से युक्त वाणी से मन्त्रों का गायन करें कि , इसे सुनकर श्रोता अथवा जन सामान्य पर तो अच्छा प्रभाव पड़े ही, इसके साथ ही साथ परमपिता परमात्मा को भी प्रसन्न कर पाने में हम सफल हो सकें।

१ अग्निहोत्र की एकादश क्रिया पर्यंत यज्ञ वेदी को पृथ्वी के रूप में माना गया था, क्योंकि पृथ्वी अपने चारों और से समुद्रों से घिरी हुई है। जिस प्रकार हमारी पृथ्वी चारों और से जल से घिरी हुई है, उस प्रकार ही हमारी यह यज्ञ वेदी भी इन मन्त्रों के द्वारा जल से चारों और से घेरी जाती है। यज्ञ करने वाले हमारे यज्ञमान लोग इस यज्ञ में जो भी आहुति स्वरूप दान का कर्म करते हैं, उस दान को विशाल यज्ञ वेदी अर्थात् यह सब कुछ पृथ्वी पर भी चरितार्थ करना होता है। अपने इस छोटे से जीवन में जितने भी प्राणियों का उपकार कर सको, दीन दु :खियों की सहायता कर सको, पशु, पक्षियों, कीट, पतंगों की जीतनी सेवा सुश्रुषा कर सको, अवश्य करो।

२ यहाँ हम दूसरे संकेत के रूप में एक दुर्ग को ही लेते हैं। हम देखते हैं की लगभग सब दुर्ग अपने चारों और एक खाई से घिरे रहते हैं और इस खाई में सदा जल भरा रहता है। इस जल से भरी खाई के कारण शत्रु लोग दुर्ग के निकट नहीं आ पाते और दुर्ग के अन्दर के लोग पूरी तरह से सुरक्षित रह पाते हैं। जब हम यज्ञ कुण्ड के चारों दिशाओं में जल फैला देते हैं तो हमारा यज्ञ निरामिष हो जाता है। जो अफवाह फैलाई गई थी कभी कि यज्ञ में बली दी जाती थी, इस बात को हमारी यह क्रिया दूर करती है। हम यज्ञ कुण्ड के चारों और जो जल प्रसेचन करते हैं, इसके कारण किसी प्रकार के कृमि, कीट आदि जंतु यज्ञ के समय यज्ञ कुण्ड में प्रवेश कर जलने से बच जाते हैं। यदि यह जल न डाला जावे तो यह अनेक प्रकार के कीट यज्ञ कुण्ड के निकट आ कर ताप से जल जाते हैं। जो कीट पहले से ही यज्ञ कुण्ड में किसी प्रकार आ गए होते हैं, वह अग्नि के आरम्भ होते ही ताप को सहन न कर पाने के कारण भाग कर बाहर हो जाते हैं और यह जल नए कीट निकट नहीं आने देता। इस प्रकार हम तो कीट तक की हत्या यज्ञ में नहीं होने देते फिर बलि का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता ?

३ जब हम यज्ञकुंड के चारों और जल छोड़ देते हैं तो यह जल यज्ञकुण्ड में से निकल रही अग्नि के ताप को कुछ सीमा तक ठंडा कर निकट ही बैठे यज्ञमान आदि को सहनीय बना देता है, अन्यथा यज्ञमान आदि के लिए यज्ञकुण्ड के पास बैठना संभव न हो पावेगा। इससे यज्ञमान होता लोगों को सुख की अनुभूति होती है। हमारे वायु मंडल में कुछ इस प्रकार की वायु भी होती है जो हमारी हानि का कारण होती है। अब वह वायु हमारे पास नहीं आ पाती। भोपाल में कुछ वर्ष एक गैस काण्ड हुआ था, जिससे हुई हानि अब भी वहां के लोग सहन कर रहे हैं , जबकि बहुत से लोग इस अनिष्ट गैस के कारण मर गए थे किन्तु उन लोगों को उस समय कुछ भी कुछ नहीं हुआ, जो उस समय यज्ञ कर रहे थे। इस से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ के पास गंदी वायु नहीं आ पाती।

४ इस यज्ञ का एक और सर्वोत्तम लाभ यह है कि जब भी कभी हम परमपिता परमात्मा के निकट जाने के यत्न करते हैं तो सांसारिक मोहमाया हमें एसा करने में बाधक बन जाते हैं किन्तु जब हम अग्निहोत्र करते हैं तो इस समय यज्ञ कर रहे हमरे यज्ञमान लोग सांसारिक मोहमाया से अलग हो जाते हैं और

केवल परमपिता परमात्मा में ही विचरण करने लगते हैं। हम देखते हैं कि अनेक स्थानों पर जहाँ दो देशों की सीमा होती है, वहां कोई नदी बह रही होती है, यह नदी ही इन दो देशों को अलग कर देती है और यह नदी ही उन देशों की सीमा बन जाती है। इस प्रकार ही यज्ञ कुण्ड के चारों और का यह जल संसार और परमार्थ के मध्य की विभाजक रेखा बन जाता है। यह ममता और अहंकार आदि सांसारिक वृत्तियों को दूर करता है, आसुरी वृत्तियों को दबा देता है, हमारे कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए कर्तव्य बुद्धि को सक्रीय करता है । इस प्रकार परमपिता परमात्मा के चरणों में जाने के लिए प्रेरित हो कर हम यज्ञ करते हैं। यह ही हमारे जल प्रसेचन का आध्यात्मिक ही नहीं सर्वोत्कर्ष फल भी हो सकता है। (इस जल प्रसेचन क्रिया की पंडित बुद्ध देव विद्यालंकार जी ने एक बहुत ही मार्मिक और सुन्दर व्याख्या की है, वह मैं कभी फिर दूंगा।) अब तो बस इतना ही समझ लेना चाहिए कि किटाणुओं की रक्षा करते हुए यह जल हमें परम प्रभु के निकत ले जाने वाला हो।

डॉ.अशोक आर्य
पाकेत १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से.७ वैशाली
२०१०१२ गाजियाबाद उ.प्र.भारत
चलभाष ९३५४८४५४२६ व्हट्स एप्प ९७१८५२८०६८
E Mail ashokaraya1944@rediffmail.com